कविवर पण्डित बनारसीदास विरचित
समयसारनाटक–गर्भित

गुणस्थान

सम्पादक :
ब्र. यशपाल जैन, एम.ए., जयपुर

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए–४, बापूनगर, जयपुर (राजस्थान) ३०२०१५
फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८
फैक्स : २७०४१२७, E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : २,०००
१४ जनवरी, २०१३

कहाँ/क्या?

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
प्रकाशकीय	२	संपादकीय	४
भूमिका	५	मिथ्यात्व	९
सासादन	१२	मिश्र	१३
अविरत	१४	देशविरत	२३
प्रमत्त	३१	अप्रमत्त	३७
अपूर्वकरण	३८	अनिवृत्तिकरण	३९
सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्त	४०	क्षीणमोह	४१
सयोगकेवली	४२	अयोगकेवली	४५
संवर-निर्जरा	४६	गुणस्थान का सार	४८

मूल्य :
६ रुपये

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

१. श्री अशोककुमार विजयकुमार सुपुत्र श्रीमती कमलप्रभा ध.प. श्रीपालजी बड़जात्या, इन्दौर	२५१
२. श्रीमती पुष्पलता जैन ध.प. अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा	२५१
३. स्व. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	२५१
४. श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत	२५१
५. श्रीमती कंचनदेवी ध.प. चिरंजीलालजी कासलीवाल, जयपुर	२५१
६. श्री मानिकचन्दजी जैन, 'एडपैनवाले', मुम्बई	२५१
७. श्री कैलाशचन्दजी जैन, ठाकुरगंज	२०१
८. श्री धर्मचन्दजी जैन, जबलपुर	२०१
९. श्रीमती अंजनादेवी जैन, बारां	२०१
१०. श्रीमती सरोजदेवी राहुल जैन, जयपुर	२००
११. श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी	१५१
१२. स्व. धापूदेवी ध.प. स्व. ताराचन्दजी गंगवाल जयपुर की पुण्य स्मृति में	१५१
कुल राशि	**२,६११**

मुद्रक :
श्री प्रिन्टर्स
मालवीयनगर,
जयपुर

प्रकाशकीय

कविवर पण्डित बनारसीदास विरचित समयसार नाटक में गर्भित **गुणस्थान** को अलग पुस्तकरूप में प्रकाशित करते हुए हमें विशेष आनन्द हो रहा है। श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के शास्त्री प्रथम वर्ष के अभ्यासक्रम में पढ़ाने का अवसर मुझे सौभाग्य से अनेक वर्षों से मिला हुआ है? इसके पहले अगस्त एवं अक्टूबर माह में लगने वाले शिविर में भी यह विषय लेने का अवसर मुझे मिलता रहा है। समाज में अनेक नगरों में भी गुणस्थान विषय को जिज्ञासुओं के अनुरोध के अनुसार समझाने का सुअवसर मिलता रहा है। इस कारण जहाँ भी आगम में गुणस्थान का विषय आता है तो उसे बारीकी से देखने का मेरा भाव बना रहा। इसी क्रम में समयसार-नाटक में आया हुआ गुणस्थान अधिकार सूक्ष्मता से पढ़ा। गुणस्थान के विषय को समझने के लिए विषय उपयोगी लगा; इसलिए इसे प्रकाशित करने का मानस बना है। पिछले माह में ही ट्रस्ट ने श्री तारण-तरण स्वामीजी विरचित ज्ञानसमुच्चयसार में समागत गुणस्थान विषय को पुस्तकरूप में प्रकाशित किया है, जो पाठकों तक अध्ययनार्थ पहुँच ही चुका है, जिनको नहीं मिला हो मंगाकर अध्ययन अवश्य करें।

इस कृति का कम्पोज करने का कार्य श्री कैलाशचन्दजी शर्मा ने किया है तथा इसे आकर्षक रूप से छपाना एवं कवर पेज को सौन्दर्य के साथ तैयार करना आदि कार्य प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिलजी बंसल ने बखूबी निभाया है एवं दातारों का सहयोग भी उल्लेखनीय है, अतः इन सबको अनेकशः धन्यवाद।

– **ब्र. यशपाल जैन,** एम.ए.
प्रकाशन मंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

संपादकीय

'गुणस्थान' विषय का विशेष सूक्ष्म अध्ययन करने की भावना से मैंने समयसार नाटक का गुणस्थान अधिकार देखा। मुझे अच्छा लगा। इससे पूर्व इतनी महिमा मुझे इस अधिकार की नहीं आयी थी। मैंने सोचा इस गुणस्थान अधिकार को स्वतंत्ररूप से संपादित करके छोटी पुस्तक बनायी जाय तो जिज्ञासु लोग इस विषय का अध्ययन करने में और विशेष रुचि लेंगे।

पण्डित बनारसीदासजी ने गुणस्थान के वर्णन में चरणानुयोग की दृष्टि से अच्छा कथन किया है। पंचम देशविरत गुणस्थान के ११ प्रतिमाओं के प्रकरण में प्रत्येक प्रतिमा का भिन्न-भिन्न कथन किया है। यह कथन अन्यत्र दुर्लभ है। २२ अभक्ष्य, श्रावक के २१ गुण, मिथ्यात्व के भेद आदि कथन भी विशेष है। कर्मसापेक्षा सम्यक्त्व के नौ भेद भी एक दृष्टि से नया कथन लगा।

कर्म के क्षयोपशम आदि का जटिल कथन भी छंदबद्ध करना वास्तव में ही टेडी खीर है; तथापि पण्डितजी इस कार्य में विशेष सफल सिद्ध हुए हैं।

मैंने संपादन के कार्य में कुछ नया विशेष काम किया नहीं; तथापि जो बन चुका है, उसका ज्ञान करना चाहता हूँ।

१. अधिकार के प्रारम्भ में भूमिका विभाग स्वतंत्र दिया है।
२. वर्तमानकाल में प्रचलित नाटक समयसार के पूर्व प्रकाशित प्रति के माध्यम से छन्दों को शुद्ध बनाने का प्रयास किया है।
३. छंद, हैडिंग, कठिन शब्द, शब्दार्थ, सबका टाईप अलग-अलग किया है।
४. विशेष विषय को बड़े अक्षरों में दिया है।
५. छन्द के अर्थ में भी अनुच्छेद बनाये हैं।
६. जहाँ आवश्यकता लगी वहाँ अर्थ में १,२,३ आदि अंक बड़े अक्षरों में दिये हैं। इसकारण अध्ययन करने में अनुकूलता होगी।
७. फोलिओ में भी गुणस्थान के अनुसार स्पष्ट विभाजन किया है, जो पहले नहीं था। इसकारण से अपेक्षित गुणस्थान का ज्ञान करना सुलभ हो गया है।
८. गुणस्थान को क्रमांक देकर एक-दूसरे से स्पष्टरूप से अलग दिखाया है।

– ब्र. यशपाल जैन

कविवर पंडित बनारसीदासजी विरचित

समयसारनाटक-गर्भित

गुणस्थान

भूमिका

मंगलाचरण (दोहा)

जाकी भक्ति प्रभाव सौं, कीनौ ग्रन्थ निवाहि।
जिन-प्रतिमा जिन-सारखी, नमै बनारसि ताहि।।१।।

शब्दार्थ – सारखी = सदृश। **निवाहि** = निर्वाह।

अर्थ – जिसकी भक्ति के प्रसाद से यह ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त हुआ, ऐसी जिनराज सदृश जिन-प्रतिमा को पण्डित बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।।१।।

जिन-प्रतिबिम्ब का माहात्म्य (सवैया इकतीसा)

जाके मुख दरस सौं भगत के नैननि कौं,
थिरता की बानि बढ़ै चंचलता विनसी।
मुद्रा देखि केवली की मुद्रा याद आवै जहाँ,
जाके आगै इंद्र की विभूति दीसै तिनसी।।
जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदे मैं,
सोइ सुद्धमति होइ हुती[1] जु मलिनसी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिन की छबि सुविद्यमान जिनसी।।२।।

शब्दार्थ :– बानि = आदत। **बिनसी** = नष्ट हुई। **विभूति** = सम्पत्ति। **तिनसी** (तृणसी) = तिनका के समान। **मलिनसी** (मलिन सी) = मैली सरीखी। **जिनसी** = जिनदेव सदृश।

---

१. 'कुमति मलिनसी' ऐसा भी पाठ है।

अर्थ :– १. जिसके मुख का दर्शन करने से भक्तजनों के नेत्रों की चंचलता नष्ट होती है और स्थिर होने की आदत बढ़ती है अर्थात् एकदम टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। २. जिस मुद्रा के देखने से केवली भगवान का स्मरण हो पड़ता है। ३. जिसके सामने सुरेन्द्र की सम्पदा भी तिनके के समान तुच्छ भासने लगती है। ४. जिसके गुणों का गान करने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है और ५. जो बुद्धि मलिन थी, वह पवित्र हो जाती है।

पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि जिनराज के प्रतिबिम्ब की प्रत्यक्ष महिमा है। **जिनेन्द्र की मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र के समान सुशोभित होती है** ।।२ ।।

जिन–मूर्ति पूजकों की प्रशंसा **(सवैया इकतीसा)**

जाके उर अंतर, सुद्रिष्टि की लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी ।।१ ।।
सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ,
गरब कौ त्यागी षट-दरब कौ पारखी ।।२।।
आगम कै अच्छर परे हैं जाके श्रवन मैं,
हिरदै-भंडार मैं समानी वानी आरखी।
कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी ।।३ ।।

शब्दार्थ :– सुद्रिष्टि = सम्यग्दर्शन। **ममारखी** = मूर्छा – अचेतना। **सैली** (शैली) = पद्धति। **गरब** (गर्व) = अभिमान। **पारखी** = परीक्षक। **श्रवन** = कान। **समानी** = प्रवेश कर गई। **आरखी** (आर्षित) = ऋषि प्रणीत। **अलप** (अल्प) = थोड़ी।

अर्थ :– पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि –

१. जिनके अंतरंग में सम्यग्दर्शन की तरंग उठकर मिथ्यात्व मोहनीयजनित निद्रा की असावधानी नष्ट हो गई है।
२. जिनके हृदय में जैनमत की पद्धति प्रगट हुई है।

३. जिन्होंने मिथ्याभिमान का त्याग किया है।
४. जिन्हें छह द्रव्यों के स्वरूप की पहिचान हुई है।
५. जिन्हें अरहंत कथित आगम का उपदेश श्रवणगोचर हुआ है।
६. जिनके हृदयरूप भंडार में जैन ऋषियों के वचन प्रवेश कर गये हैं।
७. **जिनका संसार निकट आया है, वे ही जिन–प्रतिमा को जिनराज सदृश मानते हैं** ।।३ ।।

प्रतिज्ञा **(चौपाई)**

जिन-प्रतिमा जन दोष निकंदै।
सीस नमाइ बनारसि बंदै।।
फिरि मन मांहि विचारै ऐसा।
नाटक गरंथ परम पद जैसा।।४।।
परम तत्त परचै इस मांही।
गुनथानक की रचना नांही।।
यामैं गुनथानक रस आवै।
तो गरंथ अति शोभा पावै।।५।।

शब्दार्थ :– निकंदै = नष्ट करे। **गुनथानक** = गुणस्थान। **मोह और योग के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप आत्मा के गुणों की तारतम्यरूप अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं। यामैं** = इसमें। **रस** = चर्चा/भाव।

अर्थ :– जिनराज की प्रतिमा भक्तों के मिथ्यात्व को दूर करती है।

इस जिनप्रतिमा को पण्डित बनारसीदासजी ने नमस्कार करके मन में ऐसा विचार किया कि यह नाटक समयसार ग्रंथ परमपदरूप है और इसमें आत्मतत्त्व का व्याख्यान तो है; परन्तु गुणस्थानों का वर्णन नहीं है।

यदि इसमें गुणस्थानों की चर्चा सम्मिलित हो तो ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हो सकता है ।।४–५ ।।

(दोहा)

इह विचारि संछेप सौं, गुनथानक रस चोज।
वरनन करै बनारसी, कारन सिव-पथ खोज।।६ ।।

नियत एक विवहार सौं, जीव चतुर्दस भेद।
रंग जोग बहु विधि भयौ, ज्यौं पट सहज सुफेद ॥७॥

शब्दार्थ : संछेप सौं = थोड़े में। **जोग** (योग) = संयोग। **पट** = वस्त्र।

अर्थ :– यह सोचकर पण्डित बनारसीदासजी **शिव–मार्ग खोजने में कारणभूत गुणस्थानों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं** ।।६।।

जीव पदार्थ निश्चयनय से एकरूप है और व्यवहारनय से गुणस्थानों के भेद से चौदह प्रकार का है।

जिसप्रकार श्वेत वस्त्र रंगों के संयोग से अनेक रंग का हो जाता है, उसीप्रकार **मोह और योग के संयोग से संसारी जीवों में चौदह अवस्थाएँ पायी जाती हैं** ।।७।।

चौदह गुणस्थानों के नाम **(सवैया इकतीसा)**

प्रथम मिथ्यात दूजौ सासादन तीजौ मिश्र,
चतुर्थ अव्रत पांचमौ विरत रंच है।
छट्ठौ परमत्त नाम सातमो अपरमत्त,
आठमो अपूरवकरन सुखसंच है॥
नौमौ अनिवृत्तिभाव दशमो सूच्छम लोभ,
एकादशमो सु उपसांत मोहबंच है।
द्वादशमो खीनमोह तेरहो सजोगी जिन,
चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है॥८॥

शब्दार्थ :– रंच = किंचित्। **सुखसंच** = आनन्द का संग्रह। **बंच** (वंचकता) = **ठगाई**–धोखा। **थिति** = स्थिति। **अंक पंच** = पाँच अक्षर।

अर्थ :– पहला मिथ्यात्व, दूसरा सासादन, तीसरा मिश्र, चौथा अव्रतसम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ देशव्रत, छठवाँ प्रमत्त मुनि, सातवाँ अप्रमत्त मुनि, आठवाँ अपूर्वकरण, नौवाँ अनिवृत्तिकरण, दसवाँ सूक्ष्मलोभ, ग्यारहवाँ उपशांतमोह, बारहवाँ क्षीणमोह, तेरहवाँ सयोगी–जिन और चौदहवाँ अयोगी जिन–जिसकी स्थिति अ इ उ ऋ लृ इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारणकाल के बराबर है।।८।।

●●●

१

मिथ्यात्व

(दोहा)

बरनै सब गुनथान के, नाम चतुर्दस सार।
अब बरनौं मिथ्यात के, भेद पंच परकार॥९॥

अर्थ – गुणस्थानों के चौदह मुख्य नाम बतलाये। अब पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन करते हैं।।९।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का उदय होता है।

(सवैया इकतीसा)

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिगृहीत,
दूजौ विपरीत अभिनिवेसिक गोत है।
तीजौ विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाकौ,
चौथो संसै जहाँ चित्त भौंर कौसौ पोत है॥
पांचमौ अग्यान अनाभोगिक गहलरूप,
जाकै उदै चेतन अचेत सी होत है।
एई पाँचौं मिथ्यात जीव कौ जग मैं भ्रमावैं,
इनकौ विनास समकित कौ उदोत है॥१०॥

शब्दार्थ :– गोत = नाम। **भौंर** = भँवर। **पोत** = जहाज। **गहल** = अचेतता। **उदोत** = प्रगट होना।

अर्थ :– पहला अभिग्रहीत अर्थात् **एकान्त** मिथ्यात्व है। दूसरा अभिनिवेशिक अर्थात् **विपरीत** मिथ्यात्व है। तीसरा अनाभिग्रह अर्थात् **विनय** मिथ्यात्व है। चौथा चित्त को भँवर में पड़े हुए जहाज के समान डाँवाडोल करनेवाला **संशय** मिथ्यात्व है। पाँचवाँ अनाभोगिक अर्थात् **अज्ञान** मिथ्यात्व सर्वथा असावधानी की मूर्ति है।

ये पाँचों मिथ्यात्व जीव को संसार में भ्रमण कराते हैं और इनके नष्ट होने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।।१०।।

एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

जो इकंत नय पच्छ गहि, छकै कहावै दच्छ।
सो इकंतवादी पुरुष, मृषावंत परतच्छ ।।११ ।।

शब्दार्थ :- मृषावंत = झूठा। **परतच्छ** (प्रत्यक्ष) = साक्षात्।

अर्थ :- जो अनेक नयों में से किसी एक नय का हठ ग्रहण करके उसी में लीन होकर अपने को तत्त्ववेत्ता कहता है, वह पुरुष एकान्तवादी साक्षात् मिथ्यात्वी है ।।११ ।।

विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

ग्रंथ उकत पथ उथपि जो, थापै कुमत स्वकीउ।
सुजस हेतु गुरुता गहै, सो विपरीती जीउ ।।१२ ।।

शब्दार्थ :- उकत = कहा हुआ। **उथपि** = खंडन करके। **गुरुता** = बड़प्पन।

अर्थ :- जो आगमकथित मार्ग का खंडन करके **स्नान, छुआछूत आदि में धर्म बतलाकर** अपना कपोलकल्पित पाखंड पुष्ट करता है व अपनी नामवरी के लिये बड़ा बना फिरता है, वह जीव विपरीत-मिथ्यात्वी है ।।१२ ।।

विनय मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गनैं समान जु कोइ।
नमै भगति सौं सबनि कौं, विनै मिथ्याती सोइ ।।१३ ।।

अर्थ :- जो सुदेव-कुदेव, सुगुरु-कुगुरु, सत्शास्त्र-कुशास्त्र, सबको एकसा गिनता है और विवेकरहित सब की भक्ति वन्दना करता है, वह जीव विनय-मिथ्यात्वी है ।।१३ ।।

संशय मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

जो नाना विकलप गहै, रहै हियै हैरान।
थिर ह्वै तत्त्व न सद्दहै, सो जिय संसयवान ।।१४ ।।

अर्थ :- जो जीव अनेक कोटि का अवलम्बन करके चंचल चित्त (हैरान) रहता है और स्थिर चित्त होकर पदार्थ का यथार्थ श्रद्धान नहीं करता, वह संशयमिथ्यात्वी है ।।१४ ।।

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

जाकौ तन दुख दहल सौं, सुरत होत नहि रंच।
गहल रूपै वरतै सदा, सो अग्यान तिरजंच ।।१५ ।।

शब्दार्थ :- सुरत = सुध। **रंच** = जरा भी। **गहल** = अचेतता।

अर्थ :- जिसको शारीरिक कष्ट के उद्वेग से किंचित् मात्र भी सुध नहीं है और सदैव तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ रहता है, वह जीव अज्ञानी है, पशु के समान हैं ।।१५ ।।

मिथ्यात्व के दो भेद **(दोहा)**

पंच भेद मिथ्यात के, कहै जिनागम जोइ।
सादि अनादि सरूप अब, कहूँ अवस्था दोइ ।।१६ ।।

अर्थ :- जैन शास्त्रों में जो पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन किया है, उसके सादि और अनादि दोनों का स्वरूप कहता हूँ ।।१६ ।।

सादि मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

जो मिथ्या दल उपसमै, ग्रंथि भेदि बुध होइ।
फिर आवै मिथ्यात मैं, सादि मिथ्याती सोइ ।।१७ ।।

अर्थ :- जो जीव दर्शनमोहनीय का दल अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति को उपशम करके मिथ्यात्व गुणस्थान से चढ़कर सम्यक्त्व का स्वाद लेता है और फिर मिथ्यात्व में गिरता है, वह **सादि मिथ्यात्वी** है ।।१७ ।।

अनादि मिथ्यात्व का स्वरूप **(दोहा)**

जिनि ग्रंथी भेदी नहीं, ममता मगन सदीव।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुख जीव ।।१८ ।।

शब्दार्थ :- विकल = मूर्ख। **बहिर्मुख** = पर्यायबुद्धि।

अर्थ :- जिसने मिथ्यात्व का कभी अनुदय नहीं किया, सदा शरीरादि से अहंबुद्धि रखता आया है वह , मूर्ख आत्मज्ञान से शून्य **अनादि मिथ्यात्वी** है ।।१८ ।।

●●●

२

सासादन

सासादन गुणस्थान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा **(दोहा)**

कह्यौ प्रथम गुनथान यह, मिथ्यामत अभिधान।
करूँ अलप[१] वरनन अबै, सासादन गुनथान।।१९।।

अर्थ – यह पहले मिथ्यात्व गुणस्थान का स्वरूप कहा। अब संक्षेप से सासादन गुणस्थान का कथन करते हैं।।१९।।

सासादन गुणस्थान का स्वरूप **(सवैया इकतीसा)**

जैसैं कोऊ छुधित पुरुष खाइ खीर खांड,
वौन करै पीछे कौ लगार स्वाद पावै है।
तैसैं चढ़ि चौथे पाँचए कै छट्ठे गुनथान,
काहू उपसमी कौ कषाय उदै आवै है।।
ताही समै तहाँ सौं गिरै प्रधान दसा त्यागी,
मिथ्यात अवस्था कौ अधोमुख ह्वै धावै है।
बीचि एक समै वा छ आवली प्रवांन रहै,
सोई सासादन गुनथानक कहावै है।।२०।।

शब्दार्थ :– खाँड = शक्कर। **वौन** = वमन। **प्रधान** = ऊँचा। **अधोमुख** = नीचे। **आवली** = असंख्यात समयों की एक आवली होती है।

अर्थ :– जिसप्रकार कोई भूखा मनुष्य शक्कर मिली हुई खीर खावे और वमन होने के बाद उसका किंचित् मात्र स्वाद लेता रहे; उसीप्रकार चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान तक चढ़े हुए किसी उपशमी सम्यक्त्वी को कषाय का उदय होता है तो उसी समय वहाँ से मिथ्यात्व में गिरता है।

उस गिरती हुई दशा में एक समय और अधिक से अधिक छह आवली काल तक जो सम्यक्त्व का किंचित् स्वाद (अव्यक्त मिथ्यात्व का) मिलता है, वह सासादन गुणस्थान है।

विशेष :– यहाँ अनन्तानुबंधी कषाय चौकड़ी में से किसी एक कषाय का उदय रहता है।।२०।।

●●●

१. "अलपरूप अब वरणवौ" – ऐसा भी पाठ है।

३

मिश्र

तीसरा गुणस्थान कहने की प्रतिज्ञा **(दोहा)**

सासादन गुनथान यह, भयौ समापत बीय।
मिश्रनाम गुनथान अब, वरनन करूँ तृतीय।।२१।।

शब्दार्थ – बीय (बीजो[१]) = दूसरा।

अर्थ – यह दूसरे सासादन गुणस्थान का स्वरूप समाप्त हुआ। अब तीसरे मिश्र गुणस्थान का वर्णन करते हैं।।२१।।

तृतीय गुणस्थान का स्वरूप **(सवैया इकतीसा)**

उपसमी समकिती कै तौ सादि मिथ्यामती,
दुहुंनि कौं मिश्रित मिथ्यात आइ गहै है।
अनंतानुबंधी चौकरी कौ उदै नाहि जामैं,
मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहै है।।
जहाँ सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल,
ग्यानभाव मिथ्याभाव मिश्र धारा बहै है।
याकी थिति अंतर मुहूरत उभयरूप,
ऐसौ मिश्र गुनथान आचारज कहै है।।२२।।

अर्थ :– आचार्य कहते हैं कि उपशम सम्यग्दृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव को यदि मिश्र मिथ्यात्व नामक कर्मप्रकृति का उदय हो पड़े और अनन्तानुबंधी की चौकड़ी तथा मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन छह प्रकृतियों का उदय न हो, वहाँ एकसाथ सत्यासत्य श्रद्धानरूप ज्ञान और मिथ्यात्वमिश्रित भाव रहते हैं, वह मिश्र गुणस्थान है। इसका काल अंतमुहूर्त है।

भावार्थ :– यहाँ गुड़ मिश्रित दही के स्वाद के समान सत्यासत्य मिश्रित भाव रहते हैं।।२२।।

●●●

१. यह शब्द गुजराती भाषा का है।

④

अविरतसम्यक्त्व

चौथे गुणस्थान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा **(दोहा)**

मिश्र दसा पूरन भई, कही यथामति भाखि।
अब चतुर्थ गुनथान विधि, कहौं जिनागम साखि॥२३॥

अर्थ – अपने क्षयोपशम के अनुसार मिश्र गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ। अब जिनागम की साक्षीपूर्वक चौथे गुणस्थान का वर्णन करता हूँ॥२३॥

चौथे गुणस्थान का वर्णन **(सवैया इकतीसा)**

केई जीव समकित पाइ अर्ध पुद्‌गल-
परावर्त काल तांई चोखे होइ चित्त के।
केई एक अंतरमुहूरत मैं गंठि भेदि,
मारग उलंघि सुख वेदै मोख वित्त के॥
तातैं अंतरमुहूरत सौं अर्धपुद्‌गल लौं,
जेते समै होहिं तेते भेद समकित के।
जाही समै जाकौं जब समकित होइ सोई,
तब ही सौं गुन गहै दोस दहै इतके॥२४॥

शब्दार्थ :– चोखे = अच्छे। **वेदै** = भोगे। **दहै** = जलावे। **इतके** = संसार के।

अर्थ :– जिस किसी जीव के संसार संसरण का काल अधिक से अधिक अर्द्धपुद्‌गल परावर्तन और कम से कम अंतर्मुहूर्त शेष रहता है; वह निश्चय सम्यग्दर्शन ग्रहण करके चतुर्गतिरूप संसार को पार करने वाले मोक्षसुख की बानगी लेता है। **अंतर्मुहूर्त से लगाकर अर्द्धपुद्‌गल परावर्तन काल के जितने समय हैं, उतने ही सम्यक्त्व के भेद हैं।**

जिस समय जीव को सम्यक्त्व प्रगट होता है; तभी से आत्मगुण प्रगट होने लगते हैं और सांसारिक दोष नष्ट हो जाते हैं॥२४॥

(दोहा)

अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करन करै जो कोइ।
मिथ्या गंठि विदारि गुन, प्रगटै समकित सोइ॥२५॥

अर्थ :– जो अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण पूर्वक **मिथ्यात्व का अनुदय करता है; उसे आत्मानुभव गुण प्रगट होता है और वही सम्यक्त्व है**॥२५॥

सम्यक्त्व के आठ विवरण **(दोहा)**

समकित उतपति चिन्ह गुन, भूषन दोष विनास।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनौं विवरन तास॥२६॥

अर्थ :– सम्यक्त्व का स्वरूप, उत्पत्ति, चिह्न, गुण, भूषण, दोष, नाश और अतिचार ये सम्यक्त्व के आठ विवरण हैं॥२६॥

(१) सम्यक्त्व का स्वरूप **(चौपाई)**

सत्यप्रतीति अवस्था जाकी।
दिन दिन रीति गहै समता की॥
छिन छिन करै सत्य कौ साकौ।
समकित नाम कहावै ताकौ॥२७॥

अर्थ :– आत्मस्वरूप की सत्यप्रतीति होना, दिन-प्रतिदिन समताभाव में उन्नति होना, और क्षण क्षणपर परिणामों की विशुद्धि होना; इसी का नाम सम्यग्दर्शन है॥२७॥

(२) सम्यक्त्व की उत्पत्ति **(दोहा)**

कै तौ सहज सुभाव कै, उपदेसै गुरु कोइ।
चहुँगति सैनी जीव कौ, सम्यकदरसन होइ॥२८॥

अर्थ :– चतुर्गति में सैनी जीव को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सो अपने आप अर्थात् निसर्गज और गुरु के उपदेश से अर्थात् अधिगमज सम्यक्त्व उत्पन्न होता है॥२८॥

(३) सम्यक्त्व के चिह्न **(दोहा)**

आपा परिचै निज विषै, उपजै नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दसा, समकित लच्छन एह॥२९॥

अर्थ :- अपने में ही आत्मस्वरूप का परिचय पाता है, कभी सन्देह नहीं उपजता और छल-कपट रहित वैराग्यभाव रहता है, यही सम्यग्दर्शन का चिह्न है॥२९॥

(४) सम्यग्दर्शन के आठ गुण **(दोहा)**

करुना वच्छल सुजनता, आतम निंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुन आठ॥३०॥

अर्थ :- करुणा, मैत्री, सज्जनता, स्वलघुता, समता, श्रद्धा, उदासीनता और धर्मानुराग - ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं॥३०॥

(५) सम्यक्त्व के पाँच भूषण **(दोहा)**

चित्त प्रभावना भावयुत, हेय उपादै वानि।
धीरज हरख प्रवीनता, भूषन पंच बखानि॥३१॥

अर्थ :- १. जैनधर्म की प्रभावना करने का अभिप्राय, २. हेय-उपादेय का विवेक, ३. धीरज, ४. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का हर्ष और ५. तत्त्व-विचार में चतुराई - ये पाँच सम्यग्दर्शन के भूषण हैं॥३१॥

(६) सम्यग्दर्शन, पच्चीस दोष वर्जित होता है **(दोहा)**

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढ़ता संजुगत, दोष पचीसौं एष॥३२॥

अर्थ :- आठ मद, आठ मल, छह अनायतन और तीन मूढ़ता - ये सब मिलाकर पच्चीस दोष हैं॥३२॥

आठ महामद के नाम **(दोहा)**

जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।
इनकौ गर्व जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार॥३३॥

अर्थ :- जाति, धन, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार - इनका गर्व करना, यह आठ प्रकार का महामद है॥३३॥

आठ मलों के नाम **(चौपाई)**

आसंका अस्थिरता वांछा।
ममता द्रिष्टि दसा दुरगंछा[1]॥
वच्छल रहित दोष पर भाखै।
चित्त प्रभावना मांहि न राखै॥३४॥

अर्थ :- १. जिन-वचन में सन्देह, २. आत्मस्वरूप से चिगना, ३. विषयों की अभिलाषा, ४. शरीरादि से ममत्व, ५. अशुचि में ग्लानि, ६. सहधर्मियों से द्वेष, ७. दूसरों की निंदा, ८. ज्ञान की वृद्धि आदि धर्म-प्रभावनाओं में प्रमाद - ये आठ मल सम्यग्दर्शन को दूषित करते हैं॥३४॥

छह अनायतन **(दोहा)**

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।
इनकी करै सराहना, यह षडायतन कर्म॥३५॥

अर्थ :- कुगुरु, कुदेव, कुधर्म के उपासकों और कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की प्रशंसा करना - ये छह अनायतन हैं॥३५॥

तीन मूढ़ता के नाम और पच्चीस दोषों का जोड़ **(दोहा)**

देवमूढ़ गुरुमूढ़ता, धर्ममूढ़ता पोष।
आठ आठ षट तीन मिलि, ए पचीस सब दोष॥३६॥

अर्थ :- देवमूढ़ता अर्थात् सच्चे देव का स्वरूप नहीं जानना, गुरुमूढ़ता अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि का स्वरूप नहीं समझना और धर्ममूढ़ता अर्थात् जिनभाषित धर्म का स्वरूप नहीं समझना ये तीन मूढ़ता हैं। आठ मद, आठ मल, छह अनायतन तथा तीन मूढ़ता सब मिलाकर पच्चीष दोष हुए॥३६॥

(७) पाँच कारणों से सम्यक्त्व का विनाश होता है **(दोहा)**

ग्यान गर्व मति मंदता, निठुर वचन उदगार।
रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार॥३७॥

अर्थ :- ज्ञान का अभिमान, बुद्धि की हीनता, निर्दय वचनों का भाषण, क्रोध परिणाम और प्रमाद - ये पाँच सम्यक्त्व के घातक हैं॥३७॥

१. ग्लानि

(८) सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार **(दोहा)**

लोक हास भय भोग रुचि, अग्र सोच तिथि मेव।
मिथ्या आगम की भगति, मृषा दर्सनी सेव ।।३८ ।।

अर्थ :- १. लोक-हास्य का भय अर्थात् सम्यक्त्वरूप प्रवृत्ति करने में लोगों की हँसी का भय, २. इन्द्रियों के विषय भोगने में अनुराग, ३. आगामी काल की चिन्ता, ४. कुशास्त्रों की भक्ति और ५. कुदेवों की सेवा - ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं ।।३८ ।।

(चौपाई)

अतीचार ए पंच परकारा।
समल करहिं समकित की धारा।।
दूषन भूषन गति अनुसरनी।
दसा आठ समकित की वरनी ।।३९ ।।

अर्थ :- ये पाँच प्रकार के अतिचार सम्यग्दर्शन की उज्ज्वल परिणति को मलिन करते हैं। यहाँ तक सम्यग्दर्शन को सदोष व निर्दोष दशा प्राप्त कराने वाले आठ विवरण वर्णन किये ।।३९ ।।

मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के अनुदय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

(दोहा)

प्रकृति सात अब मोह की, कहूँ जिनागम जोइ[1]।
जिनकौ उदै निवारिकै, सम्यग्दरसन होइ ।।४० ।।

अर्थ :- मोहनीयकर्म की जिन सात प्रकृतियों के अनुदय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उन्हें जिनशासन के अनुसार कहता हूँ ।।४० ।।

मोहनीयकर्म की सात प्रकृतियों के नाम **(सवैया इकतीसा)**

चारित मोह की च्यारि मिथ्यात की तीन तामैं,
प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी।
बीजी महा-मान रस भीजी मायामयी तीजी,
चौथी महालोभ दसा परिग्रह पोहनी।।

१. देखकर

पाँचईं मिथ्यामति छट्ठी मिश्रपरनति,
सातईं समै प्रकृति समकित मोहनी।
एई षट विगवनितासी एक कुतियासी,
सातौं मोहप्रकृति कहावैं सत्ता रोहनी ।।४१ ।।

शब्दार्थ :- चारितमोह = जो आत्मा के चारित्र गुण का घात करे। **अनन्तानुबंधी** = जो आत्मा के स्वरूपाचरण चारित्र को घाते-अनन्त संसार के कारणभूत मिथ्यात्व के साथ जिनका बन्ध होता है। **कोहनी** = क्रोध। **बीजी** = दूसरी। **पोहनी** = पुष्ट करनेवाली। **विगवनिता** = व्याघ्रनी। **कुतिया** = कूकरी - अथवा कर्कशा स्त्री। **रोहनी** = ढँकनेवाली।

अर्थ :- सम्यक्त्व की घातक चारित्रमोहनीय की चार और दर्शनमोहनीय की तीन - ऐसी सात प्रकृतियाँ हैं। उनमें से **पहली** अनन्तानुबंधी क्रोध, **दूसरी** अभिमान के रंग से रंगी हुई अनंतानुबंधी मान, **तीसरी** अनन्तानुबंधी माया, **चौथी** परिग्रह को पुष्ट करनेवाली अनंतानुबंधी लोभ, **पाँचवीं** मिथ्यात्व, **छट्ठी** मिश्र मिथ्यात्व और **सातवीं** सम्यक्त्वमोहनीय है। इनमें से छह प्रकृतियाँ व्याघ्रनी के समान सम्यक्त्व के पीछे पड़कर भक्षण करनेवाली हैं और सातवीं कुतिया अर्थात् कुत्ती वा कर्कशा स्त्री के समान सम्यक्त्व को सकंप वा मलिन करने वाली है। इसप्रकार **ये सातों प्रकृतियाँ, सम्यक्त्व के सद्भाव को रोकती हैं** ।।४१ ।।

सम्यक्त्वों के नाम **(छप्पय छन्द)**

सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित।
सात प्रकृति क्षय करन-हार छायिकी अखंडित।।
सात मांहि कछु खपैं, कछुक उपसम करि रक्खै।
सो क्षय उपसमवंत, मिश्र समकित रस रक्खै।।
षट प्रकृति उपसमै वा खपैं, अथवा क्षय उपसम करै।
सातईं प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरै ।।४२ ।।

शब्दार्थ :- अखंडित = अविनाशी। **चक्खै** = स्वाद लेवे। **खपैं** = क्षय करें।

अर्थ :- जो ऊपर कही हुई सातों प्रकृतियों को उपशमाता है, वह **औपशमिक सम्यग्दृष्टि** है। सातों प्रकृतियों का क्षय करनेवाला **क्षायिकसम्यग्दृष्टि है,** यह सम्यक्त्व कभी नष्ट नहीं होता। सात प्रकृतियों में से कुछ का क्षय हों और कुछ का उपशम हों तो, वह क्षायोपशमसम्यक्त्वी है, उसे सम्यक्त्व का मिश्ररूप स्वाद मिलता है। छह प्रकृतियाँ उपशम हों वा क्षय हों अथवा कोई क्षय और कोई उपशम हो केवल सातवीं प्रकृति सम्यक्त्व मोहनीय का उदय हो तो वह वेदक सम्यक्त्वधारी होता है।।४२।।

सम्यक्त्व नव भेदों का वर्णन **(दोहा)**

क्षयउपसम वरतै त्रिविधि, वेदक च्यारि प्रकार।
क्षायक उपसम जुगल जुत, नौधा समकित धार।।४३।।

शब्दार्थ :- **त्रिविधि** = तीन प्रकार का। **जुगल** = दो। **जुत** = सहित।

अर्थ :- क्षायोपशमिकसम्यक्त्व तीन प्रकार का है, वेदकसम्यक्त्व चार प्रकार का है और उपशम तथा क्षायिक ये दो भेद और मिलाने से सम्यक्त्व के नव भेद होते हैं।।४३।।

क्षायोपशमिकसम्यक्त्व के तीन भेदों का वर्णन **(दोहा)**

च्यारि खिपै त्रय उपसमै, पन क्षय उपसम दोइ।
क्षय षट् उपसम एक यौं, क्षयउपसम त्रिक होइ।।४४।।

अर्थ :- **(१)** चार[१] का अर तीन[२] का उपशम, **(२)** पाँच[३] का क्षय दो[४] का उपशम, **(३)** छह[५] का क्षय एक का उपशम, इसप्रकार क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के तीन भेद हैं।।४४।।

वेदकसम्यक्त्व के चार भेद **(दोहा)**

जहाँ च्यारि परकिति खिपहिं, द्वै उपसम इक वेद।
छय-उपसम वेदक दसा, तासु प्रथम यह भेद।।४५।।
पंच खिपैं इक उपसमै, इक वेदै जिहि ठौर।
सो छय-उपसम वेदकी, दसा दुतिया यह और।।४६।।

१. अनन्तानुबंधी की चौकड़ी २. दर्शनमोहनीय का त्रिक। ३. अनंतानुबंधी चौकड़ी और महामिथ्यात्व। ४. मिश्रमिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति। ५. अनंतानुबंधी चौकड़ी, महामिथ्यात्व और मिश्र।

क्षय षट् वेदै एक जो, क्षायक वेदक सोइ।
षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसम वेदक होइ।।४७।।

अर्थ :- **(१)** जहाँ चार[१] प्रकृतियों का क्षय, दो[२] का उपशम और एक[३] का उदय है वह प्रथम क्षायोपशमिकवेदकसम्यक्त्व है। **(२)** जहाँ पाँच[४] प्रकृतियों का क्षय, एक[५] का उपशम और एक का उदय है[६], वह द्वितीय क्षायोपशमिकवेदकसम्यक्त्व है। **(३)** जहाँ छह प्रकृतियों का क्षय और एक का उदय है वह क्षायिकवेदकसम्यक्त्व है, **(४)** जहाँ छह[७] प्रकृतियों का उपशम और एक का उदय है वह औपशमिकवेदकसम्यक्त्व है।।४५-४६-४७।।

यहाँ क्षायिक व औपशमिकसम्यक्त्व का स्वरूप न कहने का कारण

(दोहा)

उपसम क्षायक की दसा, पूरव षट् पद मांहि।
कहीं प्रगट अब पुनरुकति, कारन वरनी नांहि।।४८।।

शब्दार्थ :- **पुनरुकति (पुनरुक्ति)** = बार-बार कहना।

अर्थ :- क्षायिक और औपशमिकसम्यक्त्व का स्वरूप पहले ४२वें छप्पय छन्द में कह आये हैं; इसलिये पुनरुक्ति दोष के कारण यहाँ नहीं लिखा।।४८।।

नव प्रकार के सम्यक्त्वों का विवरण **(दोहा)**

क्षय-उपसम वेदक खिपक, उपसम समकित्त च्यारि।
तीन च्यारि इक इक मिलत, सब नव भेद विचारि।।४९।।

अर्थ :- क्षायोपशमिकसम्यक्त्व तीन प्रकार का, वेदकसम्यक्त्व चार प्रकार का और औपशमिकसम्यक्त्व एक तथा क्षायिकसम्यक्त्व एक, इसप्रकार सम्यक्त्व के मूल भेद चार और उत्तर भेद नव हैं।।४९।।

प्रतिज्ञा **(सोरठा)**

अब निश्चै व्यवहार, अरु सामान्य विशेष विधि।
कहौं च्यारि परकार, रचना समकित भूमि की।।५०।।

अर्थ :- सम्यक्त्वरूप सत्ता की निश्चय, व्यवहार, सामान्य और विशेष ऐसी चार विधि कहते हैं।।५०।।

१. अनन्तानुबंधी की चौकड़ी। २. महामिथ्यात्व और मिश्र। ३. सम्यक्प्रकृति। ४. अनन्तानुबंधी चौकड़ी और महामिथ्यात्व। ५. मिश्र। ६. अनन्तानुबंधी की चौकड़ी, महामिथ्यात्व और मिश्र। ७. अनन्तानुबन्धीकी चौकड़ी, महामिथ्यात्व और मिश्र।

सम्यक्त्व के चार प्रकार **(सवैया इकतीसा)**

१. मिथ्यामति-गंठि-भेदि जगी निरमल जोति,
जोग सौं अतीत सो तो निहचै प्रमानिये।
२. वहै दुंद दसा सौं कहावै जोग मुद्रा धरै,
मति श्रुतग्यान भेद विवहार मानियै।।
३. चेतना चिहन पहिचानि आपा पर वेदै,
पौरुष अलख तातैं सामान्य बखानियै।
४. करै भेदाभेद कौ विचार विसतार रूप,
हेय गेय उपादेय सौं विशेष जानियै।।५१।।

शब्दार्थ :– गंठि (ग्रंथि) = गाँठ। **भेदि** = नष्ट करके। **अतीत** = रहित। **दुंद दसा** = सविकल्पता।

अर्थ :– (१) मिथ्यात्व के नष्ट होने से मन-वचन-काय के अगोचर जो आत्मा की निर्विकार श्रद्धान की ज्योति प्रकाशित होती है, उसे **निश्चय सम्यक्त्व** जानना चाहिये।

(२) जिसमें योग, मुद्रा, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि के विकल्प हैं, वह **व्यवहार सम्यक्त्व** जानना।

(३) ज्ञान की अल्प शक्ति के कारण मात्र चेतना चिह्न के धारक आत्मा को पहिचानकर निज और पर के स्वरूप का जानना, सो **सामान्य सम्यक्त्व** है।

(४) हेय, ज्ञेय, उपादेय के भेदाभेद को विस्तार रूप से समझना, सो **विशेष सम्यक्त्व** है।।५१।।

चतुर्थ गुणस्थान के वर्णन का उपसंहार **(सोरठा)**

थिति सागर तैतीस, अंतर्मुहरत एक वा।
अविरतसमकित रीति, यह चुतुर्थ गुनथान इति।।५२।।

अर्थ :– अव्रतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। यह चौथे गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ।।५२।।

●●●

५

देशविरत

अणुव्रतगुणस्थान का वर्णन प्रतिज्ञा **(दोहा)**

अब वरनौं इकईस गुन, अरु बावीस अभक्ष।
जिनके संग्रह त्याग सौं, सोभै श्रावक पक्ष।।५३।।

अर्थ – जिन गुणों के ग्रहण करने और अभक्ष्यों के त्यागने से श्रावक का पाँचवाँ गुणस्थान सुशोभित होता है, ऐसे इक्कीस गुणों और बाईस अभक्ष्यों का वर्णन करता हूँ।।५३।।

श्रावक के इक्कीस गुण **(सवैया इकतीसा)**

लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत,
परदोष कौ ढकैया पर-उपगारी है।
सौमदृष्टि गुनग्राही गरिष्ट सब कौं इष्ट,
शिष्टपक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है।।
विशेषग्य रसग्य कृतग्य तग्य धरमग्य,
न दीन न अभिमानी मध्य विवहारी है।
सहज विनीत पापक्रिया सौं अतीत ऐसौ,
श्रावक पुनीत इकवीस गुनधारी है।।५४।।

शब्दार्थ :– प्रसंत = मंद कषायी। **प्रतीतवंत** = श्रद्धालु। **गरिष्ट** = सहनशील। **इष्ट** = प्रिय। **शिष्टपक्षी** = सत्य पक्ष में सहमत। **दीरघ विचारी** = अग्रसोची। **विशेषज्ञ** = अनुभवी। **रसज्ञ** = मर्म का जाननेवाला। **कृतज्ञ** = दूसरों के उपकार को नहीं भूलनेवाला। **मध्य विवहारी** = दीनता और अभिमान रहित। **विनीत** = नम्र। **अतीत** = रहित।

अर्थ :– लज्जा, दया, मंदकषाय, श्रद्धा, दूसरों के दोष ढाँकना, परोपकार, सौम्यदृष्टि, गुणग्राहकता, सहनशीलता, सर्वप्रियता, सत्य पक्ष, मिष्टवचन, अग्रसोची, विशेषज्ञानी, शास्त्रज्ञान की मर्मज्ञता, कृतज्ञता, तत्त्वज्ञानी, धर्मात्मा, न दीन न अभिमानी – मध्य व्यवहारी, स्वाभाविक

विनयवान, पापाचरण से रहित – ऐसे **इक्कीस पवित्र गुण श्रावकों को ग्रहण करना चाहिये** ।।५४।।

बाईस अभक्ष्य **(कवित्त)**

ओरा घोरबरा निसिभोजन,
बहुबीजा बैंगन संधान।
पीपर बर ऊमर कठूंबर,
पाकर जो फल होइ अजान।।
कंदमूल माटी विष आमिष,
मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अति तुच्छ तुसार चलित रस,
जिनमत ए बाईस अखान।।५५।।

शब्दार्थ :– घोरबरा = द्विदल[1]। **निसिभोजन** = रात्रि में आहार करना। **संधान** = अथाना, मुरब्बा। **आमिष** = मांस। **मधु** = शहद। **मदिरा** = शराब। **अति तुच्छ** = बहुत छोटे। **तुषार** = बर्फ। **चलित रस** = जिनका स्वाद बिगड़ जाय। **अखान** = अभक्ष्य।

अर्थ :– (१) ओला (२) द्विदल (३) रात्रिभोजन (४) बहुबीजा[2] (५) बैंगन (६) अथाना, मुरब्बा (७) पीपर फल (८) बड़फल (९) ऊमर फल (१०) कठूमर (११) पाकर फल (१२) अजान फल[3] (१३) कंदमूल (१४) माटी (१५) विष (१६) मांस (१७) शहद (१८) मक्खन (१९) शराब (२०) अतिसूक्ष्म फल (२१) बर्फ (२२) चलित रस – ये बाईस अभक्ष्य जैनमत में कहे हैं ।।५५।।

प्रतिज्ञा **(दोहा)**

अब पंचम गुनथान की, रचना बरनौं अल्प।
जामैं एकादस दसा, प्रतिमा नाम विकल्प।।५६।।

अर्थ – अब पाँचवें गुणस्थान का थोड़ा सा वर्णन करते हैं, जिसमें ग्यारह प्रतिमाओं का विकल्प है ।।५६।।

१. जिन अन्नों की दो दालें होती हैं, उन अन्नों के साथ बिना गरम किया हुआ अर्थात् कच्चा दूध, दही, मठा आदि मिलाकर खाना अभक्ष्य है। २. जिन बहुबीजन के घर नाहिं, ते सब बहुबीजा कहलाहिं। 'क्रियाकोश' ३. जिन्हें पहिचानते ही नहीं है।

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम **(सवैया इकतीसा)**

दर्सनविसुद्धकारी बारह विरतधारी,
सामाइकचारी पर्वप्रोषध विधि वहै।
सचित कौ परहारी दिवा अपरस नारी,
आठौं जाम ब्रह्मचारी निरारंभी ह्वै रहै।।
पाप परिग्रह छंडै पाप की न शिक्षा मंडै,
कोऊ याके निमित्त करै सो वस्तु न गहै।
ऐते देसव्रत के धरैया समकिती जीव,
ग्यारह प्रतिमा तिन्हैं भगवंतजी कहै।।५७।।

अर्थ :– (१) सम्यग्दर्शन में विशुद्धि उत्पन्न करनेवाली दर्शन प्रतिमा है। **(२)** बारह व्रतों का आचरण व्रत प्रतिमा है। **(३)** सामायिक की प्रवृत्ति सामायिक प्रतिमा है। **(४)** पर्व में उपवास-विधि करना, प्रोषध प्रतिमा है। **(५)** सचित्त का त्याग सचित्तविरत प्रतिमा है। **(६)** दिन में स्त्री-स्पर्श का त्याग, दिवामैथुनव्रत प्रतिमा है। **(७)** आठों पहर स्त्री मात्र का त्याग ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। **(८)** सर्व आरंभ का त्याग, निरारंभ प्रतिमा है। **(९)** पाप के कारणभूत परिग्रह का त्याग, सो परिग्रहत्याग प्रतिमा है। **(१०)** पाप की शिक्षा का त्याग अनुमतित्याग प्रतिमा है। **(११)** अपने वास्ते बनाये हुए भोजनादि का त्याग, उद्देशविरति प्रतिमा है। ये ग्यारह प्रतिमा देशव्रतधारी सम्यग्दृष्टि जीवों की जिनराज ने कही हैं ।।५७।।

प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

संजम अंस जग्यौ जहाँ, भोग अरुचि परिनाम।
उदै प्रतिग्या कौ भयौ, प्रतिमा ताकौ नाम।।५८।।

अर्थ – चारित्र गुण का प्रगट होना, परिणामों का भोगों से विरक्त होना और प्रतिज्ञा का उदय होना; इसको प्रतिमा कहते हैं ।।५८।।

दर्शन प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

आठ मूलगुण संग्रहै, कुविसन क्रिया न कोइ।
दरसन गुन निरमल करै, दरसन प्रतिमा सोइ।।५९।।

अर्थ – दर्शन गुण (सम्यक्त्वरूप परिणाम) की निर्मलता, अष्ट मूलगुणों का[1] ग्रहण और सात कुव्यसनों का त्याग, इसे दर्शन प्रतिमा कहते हैं ।।५९ ।।

व्रत प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

पंच अनुव्रत आदरै, तीनौं गुनव्रत पाल।
सिच्छाव्रत चारौं धरै, यह व्रत प्रतिमा चाल ।।६० ।।

अर्थ – पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के धारण करने को व्रत प्रतिमा कहते हैं।

विशेष – यहाँ पंच अणुव्रत का निरतिचार पालन होता है; पर गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के अतिचार सर्वथा नहीं टलते ।।६० ।।

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

दर्व[2] भाव विधि संजुगत, हियै प्रतिग्या टेक।
तजि ममता समता ग्रहै, अंतरमुहूरत एक ।।६१ ।।

(चौपाई)

जो अरि मित्र समान विचारै।
आरत रौद्र कुध्यान निवारै ।।
संयम सहित भावना भावै।
सो सामायिकवंत कहावै ।।६२ ।।

शब्दार्थ :– दर्व विधि = बाह्य क्रिया – आसन, मुद्रा, पाठ, शरीर और वचन की स्थिरता आदि की सावधानी। **भावविधि** = मन की स्थिरता और परिणामों में समता भाव का रखना। **प्रतिज्ञा** = आखड़ी। **अरि** = शत्रु। **कुध्यान** = खोटा विचार। **निवारै** = दूर करे।

अर्थ – मन में समय की प्रतिज्ञापूर्वक द्रव्य और भावविधि सहित एक मुहूर्त्त अर्थात् दो घड़ी तक ममत्वभावरहित साम्यभाव ग्रहण करना, शत्रु और मित्र पर एकसा भाव रखना, आर्त और रौद्र दोनों कुध्यानों का निवारण करना और संयम में सावधान रहना; सामायिक प्रतिमा कहलाती है ।।६१–६२ ।।

चौथी प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

सामायिक की दसा, च्यारि पहर लौं होइ।
अथवा आठ पहर रहै, पोसह प्रतिमा सोइ ।।६३ ।।

अर्थ – बारह घंटे अथवा चौबीस घंटे तक सामायिक जैसी स्थिति अर्थात् **समताभाव रखने को प्रोषध प्रतिमा कहते हैं** ।।६३ ।।

पाँचवीं प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्राशुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिग्या गीर ।।६४ ।।

अर्थ – सचित्त भोजन का त्याग करना और प्रासुक[1] जल पान करना, उसे सचित्तविरति प्रतिमा कहते हैं।

विशेष – यहाँ सचित्त वनस्पति को मुख से विदारण नहीं करते ।।६४ ।।

छठवीं प्रतिमा का स्वरूप **(चौपाई)**

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालै।
तिथि आये निसि दिवस संभालै ।।
गहि नौ बाड़ि करै व्रत रख्या।
सो षट् प्रतिमा श्रावक अख्या ।।६५ ।।

अर्थ :– नव बाड़ सहित दिन में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना और पर्व-तिथियों में दिन–रात ब्रह्मचर्य सम्हालना, दिवामैथुनव्रत प्रतिमा है ।।६५ ।।

सातवीं प्रतिमा का स्वरूप **(चौपाई)**

जो नौ बाड़ि सहित विधि साधै।
निसि दिन ब्रह्मचर्य आराधै ।।
सो सप्तम प्रतिमा धर ग्याता।
सील–सिरोमनि जगत विख्याता ।।६६ ।।

अर्थ :– जो नव बाड़ सहित सदाकाल ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता है,

१. **(१)** पंचपरमेष्ठी में भक्ति, जीवदया, पानी छानकर काम में लाना, मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग, रात्रिभोजन त्याग और उदम्बर फलों का त्याग, ये आठ मूलगुण हैं। **(२)** कहीं–कहीं मद्य, मांस, मधु और पाँच पाप के त्याग को अष्ट मूलगुण कहा है। **(३)** कहीं कहीं पाँच उदंबर फल और मद्य, माँस, मधु के त्याग को मूलगुण बतलाये हैं।

२. 'सर्व' ऐसा भी पाठ है।

३. चौबीस मिनिट की एक घड़ी होती है।

१. गर्म किया हुआ या लबंग इलायची राख आदि डालकर स्वाद बदल देने से पानी प्रासुक होता है।

वह ब्रह्मचर्य नामक सातवीं प्रतिमा का धारी, ज्ञानी, जगत् विख्यात, शील-शिरोमणि है।।६६।।

नव बाड़ के नाम **(कवित्त)**

तियथल वास प्रेम रुचि निरखन,
दे परीछ भाखै मधु बैन।
पूरव भोग केलि रस चिंतन,
गुरु आहार लेत चित चैन।।
करि सुचि तन सिंगार बनावत,
तिय परजंक मध्य सुख सैन।
मनमथ-कथा उदर भरि भोजन,
ये नौ बाड़ि कहै[1] जिन बैन।।६७।।

शब्दार्थ :- तियथल वास = स्त्रियों के समुदाय में रहना। **निरखन** = देखना। **परीछ (परोक्ष)** = अप्रत्यक्ष। **गुरु आहार** = गरिष्ट भोजन। **सुचि** = पवित्र। **परजंक** = पलंग। **मनमथ** = काम। **उदर** = पेट।

अर्थ :- (१) स्त्रियों के समागम में रहना। **(२)** स्त्रियों को रागभरी दृष्टि से देखना। **(३)** स्त्रियों से परोक्ष[2] में सराग सम्भाषण करना। **(४)** पूर्वकाल में भोगे हुए भोग-विलासों का स्मरण करना। **(५)** आनन्ददायक गरिष्ट भोजन करना। **(६)** स्नान मंजन आदि के द्वारा शरीर को आवश्यकता से अधिक सजाना। **(७)** स्त्रियों के पलंग आसन आदि पर सोना-बैठना। **(८)** कामकथा वा कामोत्पादक कथा-गीतों का सुनना। **(९)** भूख से अधिक अथवा खूब पेट भरकर भोजन करना।

इनके त्याग को जैनमत में ब्रह्मचर्य की नव बाड़ कहा है।।६७।।

आठवीं प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

जो विवेक विधि आदरै, करै न पापारंभ।
सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रनथंभ।।६८।।

अर्थ - जो विवेकपूर्वक धर्म में सावधान रहता है और सेवा, कृषि,

१. 'कहै मत जैन' ऐसा भी पाठ है। २. दृष्टि-दोष बचाने के लिये परदा आदि की ओट में संभाषण करना, अथवा पत्र-व्यवहार करना।

वाणिज्य आदि का पापारंभ नहीं करता; वह कुगति के रणथंभ को जीतनेवाली आठवीं प्रतिमा का स्वामी है।।६८।।

नववीं प्रतिमा का स्वरूप **(चौपाई)**

जो दसधा परिग्रह कौ त्यागी।
सुख संतोष सहित वैरागी।।
समरस संचित किंचित् ग्राही।
सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही।।६९।।

अर्थ :- जो वैराग्य और संतोष का आनन्द प्राप्त करता है तथा दस प्रकार के परिग्रहों में से थोड़े से वस्त्र व पात्र मात्र रखता है; वह साम्यभाव का धारक नववीं प्रतिमा का स्वामी है।।६९।।

दसवीं प्रतिमा का स्वरूप **(दोहा)**

पर को पापारंभ कौ, जो न देइ उपदेस।
सो दसमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेस।।७०।।

अर्थ - जो कुटुम्बी व अन्य जनों को विवाह, वाणिज्य आदि पापारंभ करने का उपदेश नहीं देता, वह पापरहित दसवीं प्रतिमा का धारक है।।७०।।

ग्यारहवीं प्रतिमा का स्वरूप **(चौपाई)**

जो स्वच्छंद वरतै तजि डेरा।
मठ मंडप मैं करै बसेरा।।
उचित आहार उदंड विहारी।
सो एकादश प्रतिमा धारी।।७१।।

अर्थ :- जो घर छोड़कर मठ-मंडप में निवास करता है और स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब आदि से विरक्त होकर स्वतंत्र वर्तता है तथा कृत, कारित, अनुमोदना रहित योग्य आहार ग्रहण करता है; वह ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है।।७१।।

प्रतिमाओं के सम्बन्ध में मुख्य उल्लेख **(दोहा)**

एकादश प्रतिमा दसा, कही देसव्रत मांहि।
वही अनुक्रम मूल सौं, गहौ सु छूटै नांहि।।७२।।

अर्थ – देशव्रत गुणस्थान में ग्यारह प्रतिमाएँ ग्रहण करने का उपदेश है। सो शुरू से उत्तरोत्तर अंगीकार करना चाहिये और नीचे की प्रतिमाओं की क्रिया छोड़ना नहीं चाहिये ।।७२ ।।

प्रतिमाओं की अपेक्षा श्रावकों के भेद **(दोहा)**

षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नौ पर्यन्त।
उत्तम दसमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत।।७३।।

अर्थ – छठवीं प्रतिमा तक जघन्य श्रावक, नववीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक और दसवीं–ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करनेवालों को उत्कृष्ट श्रावक कहते हैं। यह प्रतिमाओं का वर्णन पूरा हुआ ।।७३ ।।

पाँचवें गुणस्थान का काल **(चौपाई)**

एक कोड़ि पूरव गनि लीजै।
तामैं आठ बरस घटि कीजै।।
यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी।
अंतरमुहूरत जघन दशा की।।७४।।

अर्थ :– पाँचवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल, आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व और जघन्य काल, अंतर्मुहूर्त है ।।७४ ।।

एक पूर्व का प्रमाण **(दोहा)**

सत्तर लाख किरोड़ मित, छप्पन सहस किरोड़।
ऐते बरस मिलाइके, पूरव संख्या जोड़।।७५।।

अर्थ – सत्तर लाख, छप्पन हजार में एक करोड़ का गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होती है; उतने वर्ष का एक पूर्व[1] होता है ।।७५ ।।

अंतर्मुहूर्त मान **(दोहा)**

अंतर्मुहूरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकिष्ट।
एक समय एकावली, अंतरमुहूर्त कनिष्ट।।७६।।

अर्थ – दो घड़ी में से एक समय कम अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट काल है और एक समय अधिक एक आवली[2] अंतर्मुहूर्त का जघन्य काल है तथा बीच के असंख्यात भेद हैं ।।७६ ।।　●●●

१. चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है और चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है। २. असंख्यात समय की एक आवली होती है।

६
प्रमत्त

छठै गुणस्थान का वर्णन प्रतिज्ञा **(दोहा)**

यह पंचम गुनथान की, रचना कही विचित्र।
अब छट्ठे गुनथान की, दसा कहूँ सुन मित्र।।७७।।

अर्थ – पाँचवें गुणस्थान का यह विचित्र वर्णन किया; अब हे मित्र! छठै गुणस्थान का स्वरूप सुनो ।।७७ ।।

छठै गुणस्थान का स्वरूप **(दोहा)**

पंच प्रमाद दशा धरै, अट्ठाईस गुनवान।
थविरकल्पि जिनकल्पि जुत, है प्रमत्तगुनथान।।७८।।

अर्थ – जो मुनि अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं; परन्तु पाँच प्रकार के प्रमादों में किंचित् वर्तते हैं, वे मुनि प्रमत्तगुणस्थानी हैं। इस गुणस्थान में स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों प्रकार के साधु रहते हैं ।।७८ ।।

पाँच प्रमादों के नाम **(दोहा)**

धर्मराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय।
पंच प्रमाद दसा सहित, परमादी मुनिराय।।७९।।

अर्थ – धर्म में अनुराग, विकथावचन, निद्रा, विषय[1], कषाय[2] ऐसे पाँच प्रमाद सहित साधु छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तमुनि होते हैं ।।७९ ।।

साधु के अट्ठाईस मूलगुण **(सवैया इकतीसा)**

पंच महाव्रत पालै पंच समिति संभालै,
पंच इंद्री जीति भयौ त्यागी चित चैन कौ।
षट आवश्यक क्रिया द्रवित भावित साधै,
प्रासुक धरा मैं एक आसन है सैन कौ।।
मंजन न करै केश लुंचै तन वस्त्र मुंचै,
त्यागे दंतधावन सुगंधश्वास बैन कौ।

१–२. यहाँ अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान इन तीन चौकड़ी की बारह कषायों का अनुदय और संज्वलन कषाय का तीव्र उदय रहता है, इससे वे साधु किंचित् प्रमाद के वश में होते हैं और शुभाचार में विशेषतया वर्तते हैं। यहाँ विषय सेवन वा स्थूलरूप से कषाय में वर्तने का प्रयोजन नहीं है। हाँ, शिष्यों को ताड़ना आदि का विकल्प तो भी है।

ठाड़ौ कर से आहार लघुभुंजी एक बार,
अट्ठाईस मूलगुनधारी जती जैन कौ ॥८० ॥

शब्दार्थ :- पंचमहाव्रत = पंच पापों का सर्वथा त्याग । **प्रासुक** = जीव रहित । **सैन (शयन)** = सोना । **मंजन** = स्नान । **केश** = बाल । **लुंचै** = उखाड़े । **मुंचै** = छोड़े । **कर से** = हाथ से । **लघु** = थोड़ा । **जती** = साधु ।

अर्थ :- पंच महाव्रत पालते हैं। पाँचों समिति पूर्वक वर्तते हैं। पाँचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर प्रसन्न होते हैं। द्रव्य और भाव छह आवश्यक साधते हैं। त्रस जीव रहित भूमिपर करवट रहित शयन करते हैं। यावज्जीवन स्नान नहीं करते। हाथों से केशलोंच करते हैं। नग्न रहते हैं। दंतवन नहीं करते तो भी वचन और श्वास में सुगंध ही निकलती है। खड़े भोजन लेते हैं। थोड़ा भोजन लेते हैं। भोजन दिन में एक ही बार लेते हैं। ऐसे अट्ठाईस मूलगुणों के धारक जैन साधु होते हैं ।।८० ।।

पंच अणुव्रत और पंच महाव्रत का स्वरूप **(दोहा)**

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिगह साज।
किंचित त्यागी अनुव्रती, सब त्यागी मुनिराज ॥८१ ॥

शब्दार्थ :- मृषा = झूठ। **अदत्त** = बिना दिया हुआ।

अर्थ – हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पाँचों पापों के किंचित् त्यागी, अणुव्रती श्रावक और सर्वथा त्यागी, महाव्रती साधु होते हैं ।।८१ ।।

पंच समिति का स्वरूप **(दोहा)**

चलै निरखि भाखै उचित, भखै अदोष अहार।
लेइ निरखि डारै निरखि, समिति पंच परकार ॥८२ ॥

अर्थ – जीवजन्तु की रक्षा के लिये देखकर चलना, ईर्यासमिति है। हितमित प्रिय वचन बोलना, भाषासमिति है। अन्तराय रहित निर्दोष आहार लेना, एषणासमिति है। शरीर, पुस्तक, पींछी, कमण्डलु आदि को देख शोध कर उठाना-रखना; आदाननिक्षेपणसमिति है। त्रस जीव रहित प्रासुक भूमिपर मल-मूत्रादिक छोड़ना, प्रतिष्ठापनसमिति है; - ऐसी ये पाँच समिति हैं ।।८२ ।।

छह आवश्यक **(दोहा)**

समता वंदन थुति करन, पड़िकौना सज्झाय।
काउसग्ग मुद्रा धरन, षडावसिक ये भाय ॥८३ ॥

शब्दार्थ :- समता = सामायिक करना। **वंदन** = चौबीस तीर्थंकरों वा गुरु आदि की वंदना करना। **पड़िकोना (प्रतिक्रमण)** = लगे हुए दोषों पर पश्चात्ताप करना। **सज्झाव** = स्वाध्याय। **काउसग्ग (कायोत्सर्ग)** = खड्गासन होकर ध्यान करना। **षडावसिक** = छह आवश्यक।

अर्थ – सामायिक, वंदना, स्तवन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग - ये साधु के छह आवश्यक कर्म हैं ।।८३ ।।

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधुओं का स्वरूप **(सवैया इकतीसा)**

थविरकलपि जिनकलपि दुविधि मुनि,
दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं।
दोऊ अठाईस मूलगुन के धरैया दोऊ,
सरव त्यागी ह्वै विरागता गहतु हैं ॥
थविरकलपि ते जिन कै शिष्य साखा होइ,
बैठिकै सभा मैं धर्मदेसना कहतु हैं।
एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर,
उदै की मरोर सौं परीसह सहतु हैं ॥८४ ॥

अर्थ :- स्थविरकल्पी और जिनकल्पी ऐसे दो प्रकार के जैन साधु होते हैं। दोनों वनवासी हैं। दोनों नग्न रहते हैं। दोनों अट्ठाईस मूलगुण के धारक होते हैं। दोनों सर्व परिग्रह के त्यागी-वैरागी होते हैं। परन्तु स्थविरकल्पी साधु शिष्य-समुदाय के साथ में रहते हैं तथा सभा में बैठकर धर्मोपदेश देते और सुनते है; पर जिनकल्पी साधु शिष्य छोड़कर निर्भय अकेले विचरते हैं और महातपश्चरण करते हैं तथा कर्म के उदय से आई हुई बाईस परीषह सहते हैं ।।८४ ।।

वेदनीय कर्मजनित ग्यारह परीषह **(सवैया इकतीसा)**

ग्रीषम मैं धूपथित सीत मैं अकंपचित्त,
भूखै धरैं धीर प्यासै नीर न चहतु हैं।
डंस मसकादि सौं न डरैं भूमि सैन करै,
बध बंध विथा मैं अडौल ह्वै रहतु हैं ॥
चर्या दुख भरै तिन फास सौं न थरहरै,
मल दुरगंध की गिलानि न गहतु हैं।

रोगनि कौ न करैं इलाज ऐसे मुनिराज,
वेदनी के उदै ये परीसह सहतु हैं ।।८५ ।।

अर्थ :- गर्मी के दिनों में धूप में खड़े रहते हैं, यह उष्णपरीषहजय है। शीत ऋतु में जाड़े से नहीं डरते, यह शीतपरीषहजय है। भूख लगे तब धीरज रखते हैं, यह भूखपरीषहजय है। प्यास में पानी नहीं चाहते, यह तृषापरीषहजय है। डांस-मच्छर का भय नहीं करते, यह दंशमशकपरीषह का जीतना है। धरती पर सोते हैं, यह शय्यापरीषहजय है। मारने-बाँधने के कष्ट में अचल रहते हैं, यह बंधपरीषहजय है। चलने का कष्ट सहते हैं, यह चर्यापरीषहजय है। तिनका-काँटा लग जावे तो घबराते नहीं, यह तृणस्पर्शपरीषह का जीतना है। मल और दुर्गंधित पदार्थों से ग्लानि नहीं करते, यह मलपरीषहजय है। रोगजनित कष्ट सहते हैं, पर उसके निवारण का उपाय नहीं करते, यह रोगपरीषहजय है। इसप्रकार वेदनीय कर्म के उदयजनित ग्यारह परीषह मुनिराज सहते हैं।।८५।।

चारित्रमोहजनित सात परीषह **(कुण्डलिया)**

ऐते संकट मुनि सहै, चारितमोह उदोत।
लज्जा संकुच दुख धरै, नगन दिगंबर होत।।
नगन दिगम्बर होत, श्रुत रति स्वाद न सेवै।
तिय सनमुख दृग रोकि, मान अपमान न बेवै।।
थिर ह्वै निरभै रहै, सहै कुवचन जग जेते।
भिच्छुक पद संग्रहै, लहै मुनि संकट ऐते ।।८६ ।।

शब्दार्थ :- संकट = दुःख। **उदोत** = उदय से। **श्रोत** = कान। **दृग** = नेत्र। **बेवै (वेदै)** = भोगे। **कुवचन** = गाली। **भिच्छुक** = याचना।

अर्थ - चारित्रमोह के उदय से मुनिराज निम्नलिखित सात परीषह सहते हैं अर्थात् जीतते हैं।

(१) नग्न दिगम्बर रहने से लज्जा और संकोचजनित दुःख सहते हैं, यह नग्नपरीषहजय है। **(२)** कर्ण आदि इन्द्रियों के विषयों का अनुराग नहीं करना सो, अरतिपरीषहजय है। **(३)** स्त्रियों के हावभाव में मोहित नहीं

होना, स्त्रीपरीषहजय है। **(४)** मान-अपमान की परवाह नहीं करते, यह सत्कारपुरस्कारपरीषहजय है। **(५)** भय का निमित्त मिलने पर भी आसन-ध्यान से नहीं हटना, सो निषद्यापरीषहजय है। **(६)** मूर्खों के कटु वचन सह लेना, आक्रोशपरीषह का जीतना है। **(७)** प्राण जावे तो भी आहारादिक के लिये दीनतारूप प्रवृत्ति नहीं करना, यह याचनापरीषहजय है। ये सात परीषह चारित्रमोह के उदय से होते हैं।।८६।।

ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह **(दोहा)**

अलप ग्यान लघुता लखै, मति उतकरष विलोइ।
ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहै परीसह दोइ।।८७।।

अर्थ - ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह हैं। अल्पज्ञान होने से लोग छोटा गिनते हैं और इससे जो दुख होता है उसे साधु सहते हैं; यह अज्ञानपरीषहजय है। ज्ञान की विशालता होने पर गर्व नहीं करते, यह प्रज्ञापरीषहजय है। ऐसी ये दो परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जैन साधु सहते हैं।।८७।।

दर्शनमोहनीयजनित एक और अंतरायजनित एक परीषह **(दोहा)**

सहै अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत।
रोकै उमंग अलाभ की, अंतराय के होत।।८८।।

अर्थ - दर्शनमोहनीय के उदय से सम्यग्दर्शन में कदाचित् दोष उपजे तो वे सावधान रहते हैं - चलायमान नहीं होते, यह दर्शनपरीषहजय है। अंतरायकर्म के उदय से वांछित पदार्थ की प्राप्ति न हो तो जैनमुनि खेद-खिन्न नहीं होते, यह अलाभपरीषहजय है।।८८।।

बाईस परीषहों का वर्णन **(सवैया इकतीसा)**

एकादस वेदनी की, चारितमोह की सात,
ग्यानावरनी की दोइ, एक अंतराय की।
दर्सनमोह की एक द्वाविंसति बाधा सबै,
केई मनसा की, केई वाकी, केई काय की।
काहूकौ अलप काहूकौ बहुत उनीस तांई,
एक ही समै मैं उदै आवै असहाय की।

चर्या थित सज्जा मांहि एक सीत उस्न मांहि,
एक दोइ होहिं तीन नाहिं समुदाय की ।।८९ ।।

शब्दार्थ :- मनसा की = मन की। **वाकी (वाक्य की)** = वचन की। **काय** = शरीर। **सज्जा** = शय्या। **समुदाय** = एक साथ।

अर्थ :- वेदनीय की ग्यारह, चारित्रमोहनीय की सात, ज्ञानावरणीय की दो, अंतराय की एक और दर्शनमोहनीय की एक - ऐसी सब बाईस परीषह हैं। उनमें से कोई मनजनित, कोई वचनजनित और कोई कायजनित हैं। इन बाईस परीषहों में से एक समय में एक साधु को अधिक से अधिक उन्नीस तक परीषह उदय आती हैं। क्योंकि चर्या, आसन और शय्या इन तीन में से कोई एक और शीत उष्ण में से कोई एक, इस तरह पाँच में से दो का उदय होता है, शेष तीन का उदय नहीं होता ।।८९ ।।

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना **(दोहा)**

नाना विधि संकट-दसा, सहि साधै सिवपंथ।
थविरकल्पि जिनकल्पि धर, दोऊ सम निगरंथ ।।९० ।।
जो मुनि संगति मैं रहै, थविरकल्पि सो जान।
एकाकी जाकी दसा, सो जिनकल्पि बखान ।।९१ ।।

अर्थ - स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों प्रकार के साधु एकसे निर्ग्रंथ होते हैं और अनेक प्रकार की परीषह जीतकर मोक्षमार्ग साधते हैं ।।९० ।। जो साधु संघ में रहते हैं, वे स्थविरकल्पधारी हैं और जो एकलविहारी हैं, वे जिनकल्पधारी हैं ।।९१ ।।

(चौपाई)

थविरकलपि धर कछुक सरागी।
जिनकलपी महान वैरागी ।।
इति प्रमत्तगुनथानक धरनी।
पूरन भई जथारथ वरनी ।।९२ ।।

अर्थ :-स्थविरकल्पी साधु किंचित् सरागी होते हैं और जिनकल्पी साधु अत्यन्त वैरागी होते हैं। यह छठे गुणस्थान के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया।।९२ ।।

●●●

७

अप्रमत्त

सप्तम गुणस्थान का वर्णन **(चौपाई)**

अब वरनौं सप्तम विसरामा।
अपरमत्त गुनथानक नामा ।।
जहाँ प्रमाद दशा विधि नासै।
धरम ध्यान थिरता परकासै ।।९३ ।।

अर्थ - अब स्थिरता के स्थान अप्रमत्तगुणस्थान का वर्णन करते हैं। यहाँ धर्मध्यान में चंचलता लानेवाली पंच प्रकार की प्रमाद क्रिया नहीं है और मन, धर्मध्यान में स्थिर होता है ।।९३ ।।

(दोहा)

प्रथम करन चारित्र कौ, जासु अंत पद होइ।
जहाँ अहार विहार नहिं, अपरमत्त है सोइ ।।९४ ।।

अर्थ - जिस गुणस्थान के अंत तक चारित्रमोह के उपशम व क्षय का कारण अधःप्रवृत्तिकरण चारित्र रहता है और आहार विहार नहीं रहता, वह अप्रमत्तगुणस्थान है।

विशेष :- सातवें गुणस्थान के दो भेद हैं - पहला स्वस्थान और दूसरा सातिशय, सो जब तक छट्ठे से सातवें और सातवें से छट्ठे में अनेक बार चढ़ना-पड़ना रहता है, तब तक **स्वस्थान गुणस्थान** रहता है।

सातिशय गुणस्थान में अधःकरण के परिणाम रहते हैं, वहाँ आहार-विहार नहीं है ।।९४ ।।

●●●

अधःप्रवृत्तकरण संबंधी अंतमुहूर्त काल पूर्ण कर प्रति समय अनंतगुणी शुद्धि को प्राप्त हुए परिणामों को अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं। इसमें अनुकृष्टि रचना नहीं होती। **- गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५०**

८

अपूर्वकरण

अष्टम गुणस्थान का वर्णन **(चौपाई)**

अब वरनौं अष्टम गुनथाना।
नाम अपूरवकरन बखाना॥
कछुक मोह उपशम करि राखै।
अथवा किंचित क्षय करि नाखै॥९५॥

अर्थ – अब अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान का वर्णन करता हूँ, जहाँ मोह का किंचित् उपशम[१] अथवा किंचित् क्षय होता है।।९५।।

पुनः **(चौपाई)**

जे परिनाम भए नहिं कब ही।
तिनकौ उदै देखिये जब ही॥
तब अष्टम गुनथानक होई।
चारित करन दूसरौ सोई॥९६॥

अर्थ – इस गुणस्थान में ऐसे विशुद्ध परिणाम होते हैं, जैसे पूर्व में कभी नहीं हुए थे; इसीलिये इस आठवें गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है।

यहाँ चारित्र के तीन करणों में से अपूर्वकरण नामक दूसरा करण होता है ।।९६।।

●●●

अत्यन्त निर्मल ध्यानरूपी अग्नि शिखाओं के द्वारा, कर्म-वन को दग्ध करने में समर्थ, प्रत्येक समय में एक-एक सुनिश्चित वृद्धिंगत वीतराग परिणामों को अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

– गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५७

१-२. उपशमश्रेणी में मोह का उपशम और क्षपकश्रेणी में क्षय होता है।

९

अनिवृत्तिकरण

नौवें गुणस्थान का वर्णन **(चौपाई)**

अब अनिवृत्तिकरन सुनु भाई।
जहाँ भाव थिरता अधिकाई॥
पूरव भाव चलाचल जेते।
सहज अडोल भए सब तेते॥९७॥

अर्थ – हे भाई! अब अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थान का स्वरूप सुनो। जहाँ परिणामों की अधिक स्थिरता है, इससे पहले आठवें गुणस्थान में जो परिणाम किंचित् चपल थे, वे यहाँ अचल हो जाते हैं।।९७।।

पुनः **(चौपाई)**

जहाँ न भाव उलटि अध आवै।
सो नवमो गुनथान कहावै॥
चारितमोह जहाँ बहु छीजा।
सो है चरन करन पद तीजा॥९८॥

शब्दार्थ :– उलटि = लौटकर। **अध** = नीचे। **छीजा** = नष्ट हुआ।

अर्थ – जहाँ चढ़े हुए परिणाम फिर नहीं गिरते, वह नववाँ गुणस्थान कहलाता है। इस नववें गुणस्थान में चारित्रमोहनीय का बहु[१] अंश नष्ट हो जाता है, यह चारित्र का तीसरा करण है।।९८।।

●●●

अनिवृत्ति बादरसांपराय प्रविष्ट शुद्धि संयतों में उपशमक भी होते हैं और क्षपक भी होते हैं। **–धवला पुस्तक १, पृष्ठ–१८४ से १८७**

---

१. सूक्ष्म लोभ को छोड़कर सब चारित्रमोह।

(१०)

सूक्ष्मसाम्पराय

दसवें गुणस्थान का वर्णन **(चौपाई)**

कहौं दसम गुनथान दुसाखा।
जहँ सूछम सिव की अभिलाखा।।
सूछमलोभ दसा जहँ लहिये।
सूछमसांपराय सो कहिये।।९९।।

अर्थ – अब दसवें गुणस्थान का वर्णन करता हूँ, जिसमें आठवें और नववें गुणस्थान के समान उपशम और क्षायिक ऐसे श्रेणी के दो भेद हैं। **जहाँ मोक्ष की अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषा मात्र है, यहाँ सूक्ष्म लोभ का उदय है; इससे इसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं**।।९९।।

(११)

उपशान्तमोह

ग्यारहवें गुणस्थान का वर्णन **(चौपाई)**

अब उपशांतमोह गुनथाना।
कहौं तासु प्रभुता परवांना।।
जहाँ मोह उपशमै न भासै।
यथाख्व्यातचारित परगासै।।१००।।

अर्थ – अब ग्यारहवें गुणस्थान उपशांतमोह की सामर्थ्य कहता हूँ। यहाँ मोह का सर्वथा उपशम है – बिलकुल उदय नहीं दिखता और जीव का औपशमिक यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है।।१००।।

पुनः **(दोहा)**

जाहि फरस कै जीव गिर, परै करै गुन रद्द।
सो एकादसमी दसा, उपसम की सरहद्द।।१०१।।

अर्थ – जिस गुणस्थान को प्राप्त होकर जीव अवश्य ही गिरता है और प्राप्त हुए गुणों को नियम से नष्ट करता है; वह उपशम चारित्र की चरम सीमा प्राप्त करनेवाला ग्यारहवाँ गुणस्थान है।।१०१।।

●●●

(१२)

क्षीणमोह

बारहवें गुणस्थान का वर्णन

(चौपाई)

केवलग्यान निकट जहँ आवै।
तहाँ जीव सब मोह खिपावै।।
प्रगटै यथाख्व्यात परधाना।
सो द्वादसम खीनगुनठाना।।१०२।।

अर्थ – जहाँ जीव मोह का सर्वथा क्षय करता है वा केवलज्ञान बिलकुल समीप रह जाता है और क्षायिक यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है; वह क्षीणमोह नामक बारहवाँ गुणस्थान है।।१०२।।

उपशमश्रेणी की अपेक्षा गुणस्थानों का काल

(दोहा)

षट सातैं आठैं नवैं, दस एकादस थान।
अंतरमुहूरत एक वा, एक समै थिति जान।।१०३।।

अर्थ – उपशम श्रेणी की अपेक्षा छठवें, सातवें, आठवें, नववें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त वा जघन्य काल एक समय है।।१०३।।

क्षपकश्रेणी में गुणस्थानों का काल

(दोहा)

छपक श्रेनि आठैं नवैं, दस अर वलि बार[१]।
थिति उत्कृष्ट जघन्य भी, अंतरमुहूरत काल[२]।।१०४।।

अर्थ – क्षपकश्रेणी में आठवें, नववें, दसवें और बारहवें गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त तथा जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त है।।१०४।।

●●●

१-२. यह प्रास र और ल की कहीं कहीं सवर्णता की नीति से निर्दोष है – ''रलयोः सावर्ण्य वा वक्तव्यं'' सारस्वत व्याकरण।

(१३)

सयोगकेवली

तेरहवें गुणस्थान का वर्णन **(दोहा)**

छीनमोह पूरन भयौ, करि चूरन चित-चाल।
अब सजोगगुनथान की, वरनौं दसा रसाल॥१०५॥

अर्थ – चित्त की वृत्ति को चूर्ण करनेवाले क्षीणमोह गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ। अब परमानन्दमय सयोगगुणस्थान की अवस्था का वर्णन करता हूँ॥१०५॥

तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप **(सवैया इकतीसा)**

जाकी दुखदाता-घाती चौकरी विनसि गई,
चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है।
प्रगट भयौ अनंतदंसन अनंतग्यान,
वीरजअनंत सुख सत्ता समाधान है॥
जामैं आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति अस्सी,
इक्यासी चौरासी वा पचासी परवांन है।
सो है जिन केवली जगतवासी भगवान,
ताकी जो अवस्था सो सजोगीगुनथान है॥१०६॥

शब्दार्थ :– चौकरी = चार। **विनसि गई** = नष्ट हो गई। **अनंतदंसन** = अनंतदर्शन। **समाधान** = सम्यक्त्व। **जगतवासी** = संसारी, शरीर सहित।

अर्थ :– जिस मुनि के दुःखदायक घातिया चतुष्क अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय नष्ट हो गये हैं और अघातिया चतुष्क जरी जेवरी के समान शक्तिहीन हुए है। जिसको अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख – सत्ता और परमावगाढ़-सम्यक्त्व प्रगट हुए हैं। जिसकी आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की मात्र अस्सी, इक्यासी, चौरासी वा पचासी प्रकृतियों की सत्ता रह गई है, वह केवलज्ञानी प्रभु संसार में सुशोभित होता है और उसी की अवस्था को सयोगकेवली गुणस्थान[१] कहते हैं।

१. यहाँ मन-वचन-काय के सात योग होते हैं, इससे इस गुणस्थान का नाम सयोगकेवली है।

विशेष – तेरहवें गुणस्थान में जो पचासी[१] प्रकृतियों की सत्ता कही गई है, सो यह सामान्य कथन है। **१.** किसी-किसी को तो तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक बन्धन, आहारक संघात सहित पचासी प्रकृतियों की सत्ता रहती है। **२.** किसी को तीर्थंकर प्रकृति का सत्व नहीं होता तो चौरासी प्रकृतियों की सत्ता रहती है। **३.** किसी को आहारक चतुष्क का सत्व नहीं रहता और तीर्थंकर प्रकृति का सत्व रहता है तो इक्यासी प्रकृतियों की सत्ता रहती है। **४.** तथा किसी को तीर्थंकर प्रकृति और आहारक चतुष्क पाँचों का सत्व नहीं रहता, मात्र अस्सी प्रकृतियों की सत्ता रहती हैं॥१०६॥

केवलज्ञानी की मुद्रा और स्थिति **(सवैया इकतीसा)**

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा,
अथवा सु काउसग्ग मुद्रा थिरपाल है।
खेत सपरस कर्म प्रकृति कै उदै आये,
बिना डग भरै अंतरीच्छ जाकी चाल है॥
जाकी थिति पूरव करोड़ आठ वर्ष घाटि,
अंतरमुहूरत जघन्य जग-जाल है।
सो है देव अठारह दूषन रहित ताकौं,
बानारसि कहै मेरी वंदना त्रिकाल है॥१०७॥

शब्दार्थ :– अडोल = अचल। **परजंक मुद्रा** = पद्मासन। **काउसग्ग** = (कायोत्सर्ग) खड़े आसन। **अंतरीच्छ** = अधर। **त्रिकाल** = सदैव।

अर्थ :– १. जो केवलज्ञानी भगवान् पद्मासन अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा धारण किये हुए हैं। **२.** जो क्षेत्र-स्पर्श नामकर्म की प्रकृति के उदय से बिना कदम रक्खे अधर गमन करते हैं। **३.** जिनकी संसार स्थिति उत्कृष्ट आठ[२] वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। **४.** वे सर्वज्ञदेव अठारह दोष रहित हैं।

पं. बनारसीदासजी कहते हैं कि उन्हें मेरी त्रिकाल वन्दना है॥१०७॥

१. पचासी प्रकृतियों के नाम आगे ४७ पेज पर दिये हैं, देखें।

२. मोक्षगामी जीवों की उत्कृष्ट आयु चौथे काल की अपेक्षा एक कोटि पूर्व की है, और आठ वर्ष की उमरतक केवलज्ञान नहीं जागता।

केवली भगवान को अठारह दोष नहीं होते **(कुण्डलिया)**

दूषन अट्ठारह रहित, सो केवलि सजोग।
जनम मरन जाकै नहीं, नहिं निद्रा भय रोग॥
नहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोह मति।
जरा खेद परस्वेद, नांहि मद बैर विषै रति॥
चिंता नांहि सनेह, नांहि जहँ प्यास न भूख न।
थिर समाधि सुख सहित, रहित अट्ठारह दूषन॥१०८॥

शब्दार्थ :- **सोग** = शोक। **विस्मय** = आश्चर्य। **जरा** = बुढ़ापा। **परस्वेद (प्रश्वेद)** = पसीना। **सनेह** = राग।

अर्थ – जन्म, मृत्यु, निद्रा, भय, रोग, शोक, आश्चर्य, मोह, बुढ़ापा, खेद, पसीना, गर्व, द्वेष, रति, चिंता, राग, प्यास, भूख – ये अठारह दोष सयोगकेवली जिनराज को नहीं होते और निर्विकल्प आनन्द में सदा लीन रहते हैं।।१०८।।

केवलज्ञानीप्रभु के परमौदारिक शरीर का अतिशय **(कुण्डलिया)**

वानी जहाँ निरच्छरी, सप्त धातु मल नांहि।
केस रोम नरव नहिं बढ़ैं, परम उदारिक मांहि॥
परम उदारिक मांहि, जांहि इंद्रिय विकार नसि।
यथारव्यातचारित प्रधान, थिर सुकल ध्यान ससि॥
लोकालोक प्रकास-करन केवल रजधानी।
सो तेरम गुनथान, जहाँ अतिशयमय वानी॥१०९॥

शब्दार्थ :- **निरच्छरी** = अक्षर रहित। **केस (केश)** = बाल। **नख** = नाखून। **उदारिक (औदारिक)** = स्थूल। **ससि (शशि)** = चन्द्रमा।

अर्थ – तेरहवें गुणस्थान में भगवान की अतिशयमय निरक्षरी दिव्य-ध्वनि खिरती है। उनका परमौदारिक शरीर सप्त धातु और मल-मूत्र रहित होता है। केश/रोम और नाखून नहीं बढ़ते। इन्द्रियों के विषय नष्ट हो जाते हैं। पवित्र यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है। स्थिर शुक्लध्यानरूप चन्द्रमा का उदय होता है। लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञान पर उनका साम्राज्य रहता है।।१०९।। ●●●

(१४)

अयोगकेवली

चौदहवें गुणस्थान का वर्णन-प्रतिज्ञा **(दोहा)**

यह सयोगगुनथान की, रचना कही अनूप।
अब अयोगकेवल दसा, कहूँ जथारथ रूप॥११०॥

अर्थ – यह सयोगी गुणस्थान का वर्णन किया, अब अयोगकेवली गुणस्थान का वास्तविक वर्णन करता हूँ।।११०।।

चौदहवें गुणस्थान का स्वरूप **(सवैया इकतीसा)**

जहाँ काहू जीव कौं असाता उदै साता नाहिं,
काहू कौं असाता नाहिं, साता उदै पाइयै।
मन वच काय सौं अतीत भयौ जहाँ जीव,
जाकौ जसगीत जगजीतरूप गाइयै॥
जामैं कर्म प्रकृति की सत्ता जोगी जिन की,
अंतकाल द्वै समै मैं सकल खिपाइयै।
जाकी थिति पंच लघु अच्छर प्रमान सोई,
चौदहौं अजोगीगुनठाना ठहराइयै॥१११॥

शब्दार्थ :- **अतीत** = रहित। **खिपाइयै** = क्षय करते हैं। **लघु** = ह्रस्व।

अर्थ :- **१.** जहाँ पर किसी जीव को असाता[१] का उदय रहता है साता का नहीं रहता और किसी जीव को साता का उदय रहता है असाता का नहीं रहता। **२.** जहाँ जीव के मन-वचन-काय के योगों की प्रवृत्ति सर्वथा शून्य हो जाती है। **३.** जिसके जगज्जयी होने के गीत गाये जाते हैं। **४.** जिसको सयोगी जिनके समान अघातिया कर्म-प्रकृतियों की सत्ता रहती है, सो उन्हें अन्त के दो समयों में सर्वथा क्षय[२] करते हैं। **५.** इस गुणस्थान का काल पंच ह्रस्व अक्षर प्रमाण है, वह अयोगी जिन चौदहवाँ गुणस्थान है।।१११।।

१. केवलज्ञानी भगवान की असाता का उदय बाँचकर विस्मित नहीं होना चाहिये। वहाँ असाता कर्म, उदय में सातारूप परिणमता है।
२. पुनि चौदहें चौथे सुकलबल बहत्तर तेरह हतीं, – 'जिनेन्द्रपंचकल्याणक'

गुणस्थान अधिकार पूर्ण होने के बाद समयसार नाटक में आगे और चार छंद दिये हैं। ये छन्द गुणस्थान के संबंध में नहीं हैं; तथापि तत्त्वबोधक होने से यहाँ दिये हैं। रसिकजन उनका लाभ लेंगे ही।

बंध का मूल आस्रव और मोक्ष का मूल संवर है **(दोहा)**

चौदह गुनथानक दसा, जगवासी जिय मूल।
आस्रव संवर भाव द्वै, बंध मोख के मूल॥११२॥

अर्थ – गुणस्थानों की ये चौदह अवस्थाएँ संसारी अशुद्ध जीवों की हैं। आस्रव और संवरभाव बन्ध और मोक्ष की जड़ हैं।

आस्रव, बन्ध की जड़ है और संवर, मोक्ष की जड़ है।।११२।।

संवर को नमस्कार **(चौपाई)**

आस्रव संवर परनति जौलौं।
जगतनिवासी चेतन तौलौं॥
आस्रव संवर विधि विवहारा।
दोऊ भव-पथ सिव-पथ धारा॥११३॥
आस्रवरूप बंध उतपाता।
संवर ग्यान मोख-पद-दाता॥
जा संवर सौं आस्रव छीजै।
ताकौं नमस्कार अब कीजै॥११४॥

अर्थ – जब तक आस्रव और संवर के परिणाम हैं, तब तक जीव का संसार में निवास है। उन दोनों में आस्रव-विधि का व्यवहार संसार-मार्ग की परिणति है और संवर-विधि का व्यवहार मोक्ष-मार्ग की परिणति है।।११३।।

आस्रव, बन्ध का उत्पादक है और संवर, ज्ञान का रूप है; मोक्षपद का देनेवाला है। जिस संवर से आस्रव का अभाव होता है, उसे नमस्कार करता हूँ।।११४।।

ग्रन्थ के अंत में संवरस्वरूप ज्ञान को नमस्कार **(सवैया इकतीसा)**

जगत के प्रानी जीति ह्वै रह्यौ गुमानी ऐसौ,
आस्रव असुर दुखदानी महाभीम है।
ताकौ परताप खंडिवै कौं प्रगट भयौ,
धर्म कौ धरैया कर्म-रोग कौ हकीम है॥

जाकै परभाव आगै भागैं परभाव सब,
नागर नवल सुखसागर की सीम है।
संवर कौ रूप धरै साधै सिवराह ऐसौ,
ग्यान पातसाह ताकौं मेरी तसलीम है॥११५॥

शब्दार्थ :– गुमानी = अभिमानी। **असुर** = राक्षस। **महाभीम** = बड़ा भयानक। **परताप (प्रताप)** = तेज। **खंडिवै कौं** = नष्ट करने के लिये। **हकीम** = वैद्य। **परभाव (प्रभाव)** = पराक्रम। **परभाव** = पुद्‌गलजनित विकार। **नागर** = चतुर। **नवल** = नवीन। **सीम** = मर्यादा। **पातसाह** = बादशाह। **तसलीम** = वन्दना।

अर्थ :– १. आस्रवरूप राक्षस, जगत के जीवों को अपने वश में करके अभिमानी हो रहा है। **२.** जो अत्यन्त दुःखदायक और महा भयानक है। **३.** उसका वैभव नष्ट करने के लिये जो उत्पन्न हुआ है। **४.** जो धर्म का धारक है। **५.** जो कर्मरूप रोग के लिये वैद्य के समान है। **६.** जिसके प्रभाव के आगे परद्रव्यजनित राग-द्वेष आदि विभाव दूर भागते हैं। **७.** जो अत्यन्त प्रवीन और अनादिकाल से नहीं पाया था, इसलिये नवीन है। **८.** जो सुख के समुद्र की सीमा को प्राप्त हुआ है। **९.** जिसने संवर का रूप धारण किया है। **१०.** जो मोक्षमार्ग का साधक है – ऐसे ज्ञानरूप बादशाह को मेरा प्रणाम है।।११५।।

●●●

---

१. असाता वेदनीय २. देवगति। पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन, पाँच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श, ५३. देवगति प्रायोग्यानुपूर्व ५४. अगुरुलघु ५५. उपघात ५६. परघात ५७. उच्छ्वास ५८. प्रशस्तविहायोगति ५९. अप्रशस्तविहायोगति ६०. अपर्याप्तक ६१. प्रत्येक शरीर ६२. स्थिर ६३. अस्थिर ६४. शुभ ६५. अशुभ ६६. दुर्भग ६७. सुस्वर ६८. दुस्वर ६९. अनादेय ७०. अयशःकीर्ति ७१. निर्माण ७२. नीच गोत्र ७३. साता वेदनीय ७४. मनुष्यगति ७५. मनुष्यायु ७६. पंचेन्द्रिय जाति ७७. मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व ७८. त्रस ७९. बादर ८०. पर्याप्तक ८१. सुभग ८२. आदेय ८३. यशःकीर्ति ८४. तीर्थंकर ८५. उच्चगोत्र।

गुणस्थान का सार

जिसप्रकार सफेद वस्त्र पर नाना रंगों का निमित्त लगने से वह अनेकाकार होता है। उसीप्रकार शुद्ध-बुद्ध आत्मा पर अनादि काल से मोह और योगों का सम्बन्ध होने से उसकी संसारी दशा में अनेक अवस्थाएँ होती हैं, उन्हीं का नाम **गुणस्थान** है।

यद्यपि वे अनेक हैं पर शिष्यों के सम्बोधनार्थ श्रीगुरु ने १४ बतलाये हैं। ये गुणस्थान जीव के स्वभाव नहीं हैं, पर अजीव में नहीं पाये जाते, जीव में ही होते हैं, इसलिये जीव के विभाव हैं, अथवा यों कहना चाहिये कि व्यवहार नय से गुणस्थानों की अपेक्षा संसारी जीवों के चौदह भेद हैं।

पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व, **दूसरे** में अनन्तानुबन्धी, **तीसरे में** मिश्र मोहनीय का उदय मुख्यतया रहता है। **चौथे** गुणस्थान में मिथ्या, अनन्तानुबन्धी और मिश्रमोहनीय का, **पाँचवें में** अप्रत्याख्यानावरणीय का, **छठे में** प्रत्याख्यानावरणीय का अनुदय रहता है। **सातवें-आठवें** और **नववें में** संज्वलन का क्रमशः मन्द, मन्दतर, मन्दतम उदय रहता है। **दसवें में** संज्वलन सूक्ष्मलोभ मात्र का उदय और सर्वमोह का क्षय है। **ग्यारहवें में** सर्वमोह का उपशम और **बारहवें में** सर्वमोह का क्षय है। यहाँ तक छद्मस्थ अवस्था रहती है, केवलज्ञान का विकास नहीं है।

तेरहवें में पूर्णज्ञान है; परन्तु योगों के द्वारा आत्मप्रदेश सकम्प होते हैं और **चौदहवें** गुणस्थान में केवलज्ञानी प्रभु के आत्म-प्रदेश भी स्थिर हो जाते हैं।

सभी गुणस्थानों में जीव सदेह[१] रहता है। सिद्ध भगवान, गुणस्थानों की कल्पना से रहित हैं। इसलिये गुणस्थान जीव के निज-स्वरूप नहीं हैं, पर हैं, परजनित हैं – ऐसा जानकर **गुणस्थानों के विकल्पों से रहित शुद्ध बुद्ध आत्मा का अनुभव करना चाहिये।**

●●●

१. विग्रह गति में कार्माण तैजस शरीर का सम्बन्ध रहता है।